श्री वृन्दावन शतलीला / श्रीहित ध्रुवदास जी रचित

प्रथम नाम हरिवंश हित, रटि रसना दिन रैंन।
प्रीति रीति तब पाइयै, अरू वृंदावन ऐंन॥1॥
चरन सरन हरिवंश की, जब लगि आयौ नाहिं।
नव निकुंज निजु माधुरी, क्यौं परसै मन माहिं॥2॥
वृंदावन सत करन कौं, कीन्हौं मन उतसाह।
नवल राधिका कृपा बिनु, कैसैं होत निबाह॥3॥
यह आसा धरि चित्त में, कहत जथा-मति मोर।
वृंदावन सुख रंग कौ, काहु न पायौ ओर॥4॥
दुर्लभ दुर्घट सबनि तैं, वृंदावन निजु भौन।
नवल राधिका कृपा बिनु, कहि धौं पावै कौन॥5॥
सबै अंग गुनहीन हौं, ताकौ जतन न कोइ।
एक किसोरी कृपा तैं, जो कछु होइ सु होइ॥6॥
सोउ कृपा अति सुगम नहिं, ताकौ कौन उपाव।
चरन सरन हरिवंश की,सहजहिं बन्यौ बनाव॥7॥
हरिवंश चरन उर धरनि धरि, मन वच कै विस्वास।
कुँवरि कृपा ह्वै है तबहिं, अरू वृंदावन वास॥8॥
प्रिया चरन बल जानि कै, बाढ़यौ हियैं हुलास।
तेई उर में आनि हैं, वृंदाविपिन प्रकास॥9॥
कुँवरि किसोरी लाड़िली, करूनानिधि सुकुँवारि।
बरनौं वृंदाविपिन कौं, तिनके चरन सँभारि॥10॥
हेममयी अवनी सहज, रतन खचित बहु रंग।
चित्रित चित्र विचित्र गति,छबि की उठति तरंग॥11॥
वृंदावन झलकनि झमक, फूले नैंन निहारि।
रवि ससि दुतिधर जहाँ लगि, ते सब डारे वारि॥12॥
वृंदावन दुति पत्र की, उपमा कौं कछु नाहिं।
कोटि कोटि बैकुंठ हू, तिहिं सम कहे न जाहिं॥13॥
लता लता सब कलपतरू, पारिजात सब फूल।
सहज एक रस रहत हैं, झलकत जमुना कूल॥14॥
कुंज कुंज अति प्रेम सौं, कोटि-कोटि रति मैन।
दिनहिं सँवारत रहत हैं, श्री वृंदावन ऐंन॥15॥
विपिन राज राजत दिनहिं, बरसत आनँद पुंज।
लुब्ध सुगंध पराग रस, मधुप करत मधु गुंज॥16॥
अरून नील सित कमल कुल, रहे फूलि बहुरंग।
वृंदावन पहिरैं मनौं, बहुविधि बसन सुरंग॥17॥
हित सौं त्रिविध समीर बहै, जैसी रूचि जिहिं काल।
मधुर मधुर कल कोकिला, कूजत मोर मराल॥18॥
मंडित जमुना वारि यौं, राजति परम रसाल।
अति सुदेस सोभित मनौं, नील मनिनु की माल॥19॥
विपिन धाम आनंद कौ, चतुरइ चित्रित ताहि।
मदन केलि संपति सदा, तिहि कर पूरन आहि॥20॥
देवी वृंदा-विपिन की, वृंदा सखी सरूप।

जिहि विधि रुचि ह्वै दुहुंनि को,तिहि विधि करत अनूप॥21॥
छिन छिन बन की छबि नई, नवल जुगल के हेत।
समुझि बात सब जीय की, सखि वृंदा सुख देत॥22॥
गावत वृंदा-विपिन गुन, नवल लाड़िली-लाल।
सुखद लता फल फूल द्रुम, अद्भुत परम रसाल॥23॥
उपमा वृंदा-विपिन की, कहि धौं दीजै काहि।
अति अभूत अद्भुत सरस, श्री मुख बरनत ताहि॥24॥
आदि अंत जाकौ नहीं, नित्त सुखद बन आहि।
माया त्रिगुन प्रपंच की, पवन न परसत ताहि॥25॥
वृंदा विपिन सुहावनौं, रहत एक रस नित्त।
प्रेम सुरंग रँगे तहाँ, एक प्रान द्वै मित्त॥26॥
अति सरूप सुकुँवार तन, नव किसोर सुखरासि।
हरत प्रान सब सखिनि के, करत मंद मृदु हासि॥27॥
न्यारौ है सब लोक तें, वृंदावन निज गेह।
खेलत लाड़िली लाल जहाँ, भींजे सरस सनेह॥28॥
गौर स्याम तन मन रँगे, प्रेम स्वाद रस सार।
निकसत नहिं तिहिं ऐंन तें, अटके सरस विहार॥29॥
बन है बाग सुहाग कौ, राख्यौ रस में पागि।
रूप रंग के फूल दोउ, प्रीति लता रही लागि॥30॥
मदन सुधा के रस भरे, फूलि रहे दिन रैंन।
चहुँदिसि भ्रमत न तजत छिन, भृंग सखिनि के नैंन॥31॥
कानन में रहे झलकि कै, आनन विवि विधु काँति।
सहज चकोरी सखिनि की, अखियाँ निरखि सिराँति॥32॥
ऐसै रस में दिन मगन, नहिं जानत निसि भोर।
वृंदावन में प्रेम की , नदी बहै चहुँ ओर॥33॥
महिमा वृंदाविपिन की , कैसैं कै कहिं जाइ।
ऐसै रसिक किसोर दोउ, जामें रहे लुभाइ॥34॥
विपिन अलौकिक लोक में, अति अभूत रसकंद।
नव किसोर इक वैस द्रुम, फूले रहत सुछंद॥35॥
पत्र फूल फल लता प्रति, रहत रसिक पिय चाहि।
नवल कुँवरि दृग छटा जल, तिहि कर सींचे आहि॥36॥
कुँवरि चरन अंकित धरनि, देखत जिहि-जिहि ठौर।
प्रिया चरन रज जानि कैं, लुठत रसिक सिरमौर॥37॥
वृंदावन प्यारौ अधिक, यातें प्रेम अपार।
जामें खेलति लाड़िली, सर्वसु प्रान अधार॥38॥
सबै सखी सब सौंज लै, रँगी जुगल ध्रुव रंग।
समै समै की जानि रूचि, लियैं रहति हैं संग॥39॥
वृंदावन वैभव जितौ, तितौ कह्यौ नहिं जात।
देखत संपत्ति विपिन की, कमला हू ललचात॥40॥
वृंदावन की लता सम, कोटि कल्प तरू नाहिं।
रज की तुल बैकुंठ नहिं, और लोक किहिं माहिं॥41।
श्रीपति श्री मुख कमल कह्यौ, नारद सौं समुझाइ।
वृंदावन रस सबनि तें, राख्यौ दूर दुराइ॥42॥
अंसकला अवतार जे, ते सेवत है ताहि।
ऐसै वृंदाविपिन कौं, मन वच कै अवगाहि॥43॥

सिव बिधि उद्धव सबनि कैं, यह आसा रहै चित्त।
गुल्म लता ह्वै सिर धरैं, वृंदावन रज नित॥44॥
चतुरानन देख्यौ कछुक, वृंदाविपिन प्रभाव।
द्रुम द्रुम प्रति अरू लता प्रति औरै बन्यौ बनाव॥45॥
आप सहित सब चत्रभुज, सब ठाँ रह्यौ निहारि।
प्रभुता अपनी भूलि गयौ, तन मन कै रह्यौ हारि॥46॥
लोक चतुर्दश ठकुरई, संपत्ति सकल समेत।
सब तजि बसि वृंदाविपिन, रसिकन कौ रस खेत॥47॥
सकहि तौ वृंदाविपिन बसि, छिन-छिन आयु बिहात।
ऐसौ समै न पाइहै, भली बनी है बात॥48॥
छाँडि स्वाद सुख देह के, और जगत की लाज।
मनहिं मारि तन हारि कै, वृंदावन में गाज॥49॥
वृंदावन के बसत ही, अंतर जो करै आनि।
तिहि सम सत्रु न और कोउ, मन वच कै यह जानि॥50॥
वृंदावन के वास कौ, जिनकैं नाहिं हुलास।
माता मित्र सुतादि तिय, तजि ध्रुव तिनकौ पास॥51॥
और देस के बसत ही, अधिक भजन जौ होइ।
इहि सम नहिं पूजत तऊ, वृंदावन रहै सोइ॥52॥
वृंदावन में जो कबहुँ, भजन कछु नाहिं होइ।
रज तौ उड़ि लागै तनहिं, पीवै जमुना तोइ॥53॥
वृंदाविपिन प्रभाव सुनि, अपनौ ही गुन देत।
जैसैं बालक मलिन कौं, मातु गोद भरि लेत॥54॥
और ठाँव जौ जतन करै, होत भजन तउ नाहिं।
ह्याँ फिरै स्वारथ आपनैं, भजन गहैं फिरै बाँहि॥55॥
और देस के बसत ही, घटत भजन की बात।
वृंदावन में स्वारथौ, उलटि भजन ह्वै जात॥56॥
जद्यपि सब औगुन भरयौ, तदपि करत तुव ईठ।
हितमय वृंदाविपिन कौं, कैसैं दीजै पीठ॥57॥
वृंदावन तें अनत ही , जेतिक द्यौस विहात।
ते दिन लेखे जिनि गनौ, वृथा अकारत जात॥58॥
भजन रसमयी विपिन धर, समुझि बसै जौ कोइ।
प्रेम बीज तिहिं खेत तें, तब ही अंकुर होइ॥59॥
जद्यपि धावत विषैं कौं, भजन गहत बिच पानि।
ऐसै वृंदाविपिन की, सरन गही ‘ध्रुव’ आनि॥60॥
बसिबौ वृंदाविपिन कौ, जिहिं तिहिं विधि दृढ़ होइ।
नहिं चूकै ऐसौ समै, जतन कीजियै सोइ॥61॥
कहाँ तू कहाँ वृंदाविपिन, आनि बन्यौ भल बान।
यहै बात जिय समुझि कै, अपनौं छाँडि सयान॥62॥
छिन भंगुर तन जात यह ,छाँडिहि विषै अलोल।
कौड़ी बदले लेहि तू ,अद्भुत रतन अमोल॥63॥
कोटि कोटि हीरा रतन, अरू मनि विविध अनेक।
मिथ्या लालच छाँडि कै, गहि वृंदावन एक॥64॥
नहिं सो माता पिता नहिं, मित्र पुत्र कोउ नाहिं।
इनमें जो अंतर करै, बसत बृंदावन माँहि॥65॥
नाते जेते जगत के, ते सब मिथ्या मानि।

सत्य नित्य आनंदमय, वृंदावन पहिचानि॥66॥
बसि कै वृंदाविपिन में, ऐसी मन में राख।
प्रान तजौं बन ना तजौं, कहौ बात कोउ लाख॥67॥
चलत फिरत सुनियत यहै, श्री राधावल्लभ लाल।
ऐसे वृंदाविपिन में, बसत रहौ सब काल॥68॥
बसिबौ वृंदाविपिन कौ, यह मनि में धरि लेहु।
कीजै ऐसौ नैंम दृढ़, या रज में परै देह॥69॥
खंड खंड ह्वै जाइ तन, अंग अंग सत टूक।
वृंदावन नहिं छाँडियै, छाँडिबौ है बड़ी चूक॥70॥
पटतर वृंदाविपिन की, कहि धौं दीजै काहि।
जिहिं रज की ध्रुव रैनु में, मरिबौउ मंगल आहि॥71॥
वृंदावन के गुननि सुनि, हित सौं रज में लोटि।
जेहि सुख कौं पूजत नहीं, मुक्ति आदि सत कोटि॥72॥
सुरपति पसुपति प्रजापति, रहे भूलि तिहिं ठौर।
वृंदावन वैभव कहौ, कौन जानि है और॥73॥
जद्यपि राजत अवनि पर, सब ते ऊँचौ आहि।
ताकी सम कहियै कहा, श्रीपति वंदत ताहि॥74॥
वृंदावन वृंदाविपिन, वृंदा-कानन ऐन।
छिन छिन रसना रट्यौ करि, वृंदावन सुखदैन॥75॥
वृंदावन आनंदघन, तो तन नस्वर आहि।
पसु ज्यौं खोवत विषै रस, काहि न चिंतत ताहि॥76॥
वृंदावन वृंदा कहत, दुरित वृंद दुरि जाहिं।
नेह बेल रस भजन की, तब उपजै हिय माहिं॥77॥
वृंदावन श्रवननि सुनहि, वृंदावन कौ गान।
मन वच कै अति हेत सौं, वृंदावन उर आन॥78॥
वृंदावन कौ नाम रटि, वृंदावन कौं देखि।
वृंदावन सौं प्रीति करि, वृंदावन उर लेखि॥79॥
वृंदाविपिन प्रनाम करि, वृंदावन सुख खानि।
जो चाहत विश्राम ध्रुव, वृंदावन पहिचानि॥80॥
तजि कै वृंदाविपिन कौं, और तीर्थ जे जात।
छाँडि विमल चिंतामनि, कौड़ी कौ ललचात॥81॥
पाइ रतन चीन्ह्यौ नहीं, दीन्हौं कर तैं डारि।
यह माया श्री कृष्न की, मोह्यौ सब संसार॥82॥
प्रगट जगत में जगमगै, वृंदाविपिन अनूप।
नैन अछत दीसत नहीं, यह माया कौ रूप॥83॥
वृंदावन कौ जस अमल, जिहि पुरान में नाहिं।
ताकी बानी परौ जिनि, कबहूँ श्रवननि माँहि॥84॥
वृंदावन कौ जस सुनत, जिनकैं नाहिं हुलास।
तिनकौ परस न कीजिये, तजि ध्रुव तिनकौ पास॥85॥
भुवन चतुर्दस आदि दै, ह्वै है सब कौ नास।
इकछत वृंदाविपिन घन, सुख कौ सहज निवास॥86॥
वृंदावन इहि विधि बसै, तजि कैं सब अभिमान।
तृन तैं नीचौ आपकौं, जानै सोई जान॥87॥
कोमल चित्त सब सौं मिलैं, कबहुँ कठोर न होइ।
निस्प्रेही निर्वैरता, ताकौ सत्रु न कोइ॥88॥

दूजै तीजै जो जुरै, साक पत्र कछु आइ।
ताही सौं संतोष करि, रहै अधिक सुख पाइ॥89॥
देह स्वाद छुटि जाइ सब, कछु होइ छीन सरीर।
प्रेम रंग उर में बढ़ै, बिहरै जमुना तीर॥90॥
जुगल रूप की झलक उर, नैननिं रहै झलकाइ।
ऐसे सुख के रंग में, राखै मनहि रँगाइ॥91॥
आवै छबि की झलक उर, झलकै नैननि वारि।
चिंतत स्यामल गौर तन, सकहि न तनहि सँभारि॥92॥
जीरन पट अति दीन लट, हियैं सरस अनुराग।
विवस सघन वन में फिरै, गावत जुगल सुहाग॥93॥
रसमय देखत फिरै वन, नैननि बन रहै आइ।
कहुँ कहुँ आनंद रंग भरि, परै धरनि थहराइ॥94॥
ऐसी गति ह्वै है कबहुँ, मुख निसरत नहिं बैन।
देखि-देखि वृंदाविपिन, भरि-भरि ढारै नैन॥95॥
वृंदावन तरू-तरू तरै, ढरै नैन सुख नीर।
चिंतत फिरै आवेस बस, स्यामल गौर सरीर॥96॥
परम सच्चिदानंदघन, वृंदाविपिन सुदेस।
जामें कबहुँ होत नहिं, माया काल प्रवेस॥97॥
सारद जो सत कोटि मिलि, कलपन करैं विचार।
वृंदावन सुख रंग कौ, कबहुँ न पावैं पार॥98॥
वृंदावन आनंद घन, सब तें उत्तम आहि।
मो ते नीच न और कोउ, कैसे पैहों ताहि॥99॥
इत बौना आकास फल, चाहत है मन माहिं।
ताकौ एक कृपा बिना, और जतन कछु नाहिं॥100॥
कुँवरि किसोरी नाम सौं, उपज्यौ दृढ़ विस्वास।
करूनानिधि मृदु चित्त अति, तातैं बढ़ी जिय आस॥101॥
जिनकौ वृंदाविपिन है, कृपा तिनहिं की होइ।
वृंदावन में तबहि तौ, रहन पाइहै सोइ॥102॥
वृंदावन सत रतन की, माला गुही बनाइ।
भाल भाग जाके लिखी, सोई पहिरै आइ॥103॥
वृंदावन सुख रंग की, आसा जौ चित्त होइ।
निसि दिन कंठ धरे रहै, छिन नहिं टारै सोइ॥104॥
वृंदावन सत जौ कहै, सुनिहै नीकी भाँति।
निसि दिन तिहिं उर जगमगैं, वृंदावन की काँति॥105॥
वृंदावन कौ चिंतवन, यहै दीप उर बारि।
कोटि जनम के तम अघहिं, काटि करै उजियार॥106॥
बसि कै वृंदाविपिन में, इतनौ बड़ौ सयान।
जुगल चरन के भजन बिन, निमिष न दीजै जान॥107॥
सहज विराजत एक रस, वृंदावन निज धाम।
ललितादिक सखियन सहित, क्रीड़त स्यामा स्याम॥108॥
प्रेम सिंधु वृंदाविपिन, जाकौ अंत न आदि।
जहाँ कलोलत रहत नित, युगल किसोर अनादि॥109॥
न्यारौ चौदह लोक ते, वृंदावन निजु भौन।
तहाँ न कबहुँ लगत है, महाप्रलय की पौन॥110॥
महिमा वृंदा विपिन की, कहि न सकत मम जीह।

जाके रसना द्वै सहस, तिन हूँ काढ़ी लीह॥111॥
एती मति मोपै कहाँ, सोभा निधि वनराज।
ढीठौ कै कछु कहत हौं, आवत नहिं जिय लाज॥112॥
मति प्रमान चाहत कह्यौ, सोऊ कहत लजात।
सिंधु अगम जिहिं पार नहिं, कैसें सीप समात॥113॥
या मन के अवलंब हित, कीन्हौ आहि उपाइ।
वृंदावन रस कहन में , मति कबहूँ उरझाइ॥114॥
सोलह सै ध्रुव छ्यासिया, पून्यौ अगहन मास।
यह प्रबंध पूरन भयौ, सुनत होत अघ नास॥115॥
दोहा वृंदाविपिन के , इकसत षोडस आहि।
जौ चाहत रस रीति फल, छिन-छिन ध्रुव अवगाहि॥116॥

https://bhajanganga.com/bhajan/lyrics/id/36127/title/shri-vrindavan-shat-leela

अपने Android मोबाइल पर BhajanGanga App डाउनलोड करें और भजनों का आनंद ले |